अपरोक्षानुभूति

श्रीहरि:

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या



ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

अपरोक्षानुभूति

यस्य पादप्रभाध्वस्तः प्रपञ्चो भाति भासुरः।
तमहं सद्गुरुं वन्दे पूर्णानन्दं चिदात्मकम्॥

मङ्गलाचरण

श्रीहरिं परमानन्दमुपदेष्टारमीश्वरम्।
व्यापकं सर्वलोकानां कारणं तं नमाम्यहम्॥ १॥

उन परमानन्दस्वरूप उपदेष्टा, ईश्वर, व्यापक और समस्त लोकोंके कारण श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थका प्रयोजन

अपरोक्षानुभूतिर्वै प्रोच्यते मोक्षसिद्धये।
सद्भिरेव प्रयत्नेन वीक्षणीया मुहुर्मुहुः॥ २॥

अपरोक्षानुभूति मोक्ष-सिद्धिके लिये कही जाती है। सत्पुरुषोंको (इसे) प्रयत्नपूर्वक बारम्बार विचारना चाहिये।

साधनचतुष्टय

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम्॥ ३॥

अपने वर्णाश्रमधर्म और तपस्याद्वारा श्रीहरिको प्रसन्न करनेसे मनुष्योंको वैराग्यादि साधनचतुष्टयकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु वैराग्यं विषयेष्वनु।
यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्मलम्॥ ४॥

ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त समस्त विषयोंमें जो काकविष्ठाके समान वैराग्य होना है वही निर्मल वैराग्य है।

नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम्।
एवं यो निश्चयः सम्यग्विवेको वस्तुनः स वै॥ ५॥

आत्माका स्वरूप नित्य है और दृश्य उसके विपरीत (अनित्य) है—ऐसा जो दृढ़ निश्चय है वही आत्मवस्तुका विवेक है।

सदैव वासनात्यागः शमोऽयमिति शब्दितः।
निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिधीयते॥ ६॥

वासनाओंका सर्वदा त्याग करना शम कहलाता है और बाह्य-वृत्तियोंका रोकना दम कहा जाता है।

विषयेभ्यः परावृत्तिः परमोपरतिर्हि सा।
सहनं सर्वदुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता॥ ७॥

विषयोंसे पराङ्मुख होना ही परम उपरति है और सम्पूर्ण दुःखोंका सहन करना शुभ तितिक्षा मानी गयी है।

निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता।
चित्तैकाग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम्॥ ८॥

शास्त्र और आचार्यके वाक्योंमें भक्ति रखना श्रद्धा है और अपने वास्तविक लक्ष्यमें चित्तकी एकाग्रता ही समाधान कहलाता है।

संसारबन्धनिर्मुक्तिः कथं मे स्यात्कदा विभो।
इति या सुदृढा बुद्धिर्वक्तव्या सा मुमुक्षुता॥ ९॥

'प्रभो! मेरी संसारबन्धनसे कब और किस प्रकार मुक्ति होगी?' ऐसी जो सुदृढ़ बुद्धि है उसीको मुमुक्षुता कहना चाहिये।

विचारका प्रकार

उक्तसाधनयुक्तेन विचारः पुरुषेण हि।

कर्तव्यो ज्ञानसिद्ध्यर्थमात्मनः शुभमिच्छता॥ १०॥

उपर्युक्त साधनोंसे युक्त अपने शुभकी इच्छावाले पुरुषको ही ज्ञान-प्राप्तिके लिये विचार करना चाहिये।

नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः।

यथा पदार्थभानं हि प्रकाशेन विना क्वचित्॥ ११॥

क्योंकि जिस प्रकार प्रकाशके बिना कभी पदार्थका भान नहीं होता उसी प्रकार बिना विचारके और किसी साधनसे ज्ञान नहीं हो सकता।

कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्तास्य विद्यते।

उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः॥ १२॥

'मैं कौन हूँ? यह (जगत्) किस प्रकार उत्पन्न हुआ? इसका कर्ता कौन है? तथा इसका उपादान कारण क्या है?' वह विचार इस प्रकारका होता है।

नाहं भूतगणो देहो नाहं चाक्षगणस्तथा।

एतद्विलक्षणः कश्चिद्विचारः सोऽयमीदृशः॥ १३॥

'मैं भूतोंका संघातरूप देह नहीं हूँ और न इन्द्रियसमूह ही हूँ, बल्कि इनसे भिन्न ही कोई हूँ' वह विचार इस प्रकारका होता है।

अज्ञानप्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते।

सङ्कल्पो विविधः कर्ता विचारः सोऽयमीदृशः॥ १४॥

'सम्पूर्ण प्रपञ्च अज्ञानजन्य है, यह ज्ञान होनेपर लीन हो जाता है। नाना प्रकारका संकल्प ही इसका कर्ता है' वह विचार इस प्रकारका होता है।

एतयोर्यदुपादानमेकं सूक्ष्मं सदव्ययम्।

यथैव मृद्घटादीनां विचारः सोऽयमीदृशः॥ १५॥

'जैसे घटादिका उपादान कारण मृत्तिका है वैसे ही इन (अज्ञान और संकल्प) दोनोंका उपादान एक सूक्ष्म अविनाशी सत् है' वह विचार इस प्रकारका होता है।

अहमेकोऽपि सूक्ष्मश्च ज्ञाता साक्षी सदव्ययः।
तदहं नात्र सन्देहो विचारः सोऽयमीदृशः॥ १६॥

'मैं भी, जो केवल एक सूक्ष्म ज्ञाता साक्षी सत् और अविनाशी है, वही हूँ—इसमें सन्देह नहीं' वह विचार इस प्रकारका होता है।

आत्मानात्मविवेक

आत्मा विनिष्कलो ह्येको देहो बहुभिरावृतः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्॥ १७॥

आत्मा कलाहीन और एक है तथा देह अनेक तत्त्वोंसे गठित है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा?

आत्मा नियामकश्चान्तर्देहो बाह्यो नियम्यकः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्॥ १८॥

आत्मा नियामक और अन्तर्वर्ती है तथा देह बाह्य और नियम्य है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा?

आत्मा ज्ञानमयः पुण्यो देहो मांसमयोऽशुचिः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्॥ १९॥

आत्मा ज्ञानस्वरूप और पवित्र है तथा देह मांसमय और अपवित्र है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा?

आत्मा प्रकाशकः स्वच्छो देहस्तामस उच्यते।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्॥ २०॥

आत्मा सबका प्रकाशक और निर्मल है तथा देह तमोमय कहा जाता है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा?

आत्मा नित्यो हि सद्रूपो देहोऽनित्यो ह्यसन्मयः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्॥ २१॥

आत्मा नित्य और सत्स्वरूप है तथा देह अनित्य और असत् है; इन दोनोंकी जो एकता देखते हैं इससे बढ़कर और क्या अज्ञान होगा?

आत्मनस्तत्प्रकाशत्वं यत्पदार्थावभासनम्।
नाग्न्यादिदीप्तिवद्दीप्तिर्भवत्यान्ध्यं यतो निशि॥ २२॥

पदार्थोंकी जो प्रतीति होती है उसमें आत्माका ही प्रकाशकत्व है। किन्तु आत्मज्योति अग्नि आदिकी ज्योतिके समान नहीं है, क्योंकि उनके अभावमें तो रात्रिके समय अन्धकार हो जाता है (परन्तु आत्मज्योतिका कभी अभाव नहीं होता)।

देहोऽहमित्ययं मूढो धृत्वा तिष्ठत्यहो जनः।
ममायमित्यपि ज्ञात्वा घटद्रष्टेव सर्वदा॥ २३॥

घटद्रष्टाके समान सर्वदा यह जानते हुए भी कि 'यह मेरा है' अहो! मूढ पुरुष 'मैं देह हूँ' ऐसा मानता रहता है।

ज्ञानका स्वरूप

ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः॥ २४॥

मैं सम, शान्त और सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही हूँ, असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं।

निर्विकारो निराकारो निरवद्योऽहमव्ययः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः॥ २५॥

मैं निर्विकार, निराकार, निर्मल और अविनाशी हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं।

निरामयो निराभासो निर्विकल्पोऽहमाततः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः॥ २६॥

मैं दुःखहीन, आभासहीन, विकल्पहीन और व्यापक हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं।

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो नित्यमुक्तोऽहमच्युतः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः॥ २७॥

मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, नित्यमुक्त और अच्युत हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं।

निर्मलो निश्चलोऽनन्तः शुद्धोऽहमजरोऽमरः।
नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः॥ २८॥

मैं निर्मल, निश्चल, अनन्त, शुद्ध और अजर-अमर हूँ; असत्स्वरूप देह मैं नहीं हूँ—इसीको बुधजन ज्ञान कहते हैं।

ज्ञानोपदेश

स्वदेहे शोभनं सन्तं पुरुषाख्यं च संमतम्।
किं मूर्ख शून्यमात्मानं देहातीतं करोषि भोः॥ २९॥

रे मूर्ख! अपने शरीरमें पुरुष नामक सुन्दर देहातीत और शास्त्रसम्मत आत्माके रहते हुए भी तू उसे शून्यरूप क्यों करता है?

स्वात्मानं शृणु मूर्ख त्वं श्रुत्या युक्त्या च पूरुषम्।
देहातीतं सदाकारं सुदुर्दर्शं भवादृशैः॥ ३०॥

रे मूर्ख! जो तुझ-जैसोंको बड़ी कठिनतासे दिखलायी पड़ सकता है उस अपने देहातीत सत्स्वरूप आत्मपुरुषका श्रुति और युक्तिपूर्वक श्रवण कर।

अहंशब्देन विख्यात एक एव स्थितः परः।
स्थूलस्त्वनेकतां प्राप्तः कथं स्याद्देहकः पुमान्॥ ३१॥

अहं (मैं) शब्दसे प्रसिद्ध परात्मा एकमात्र स्थित है। (अर्थात् वह अनेक तत्त्वोंका संघात नहीं है) फिर, जो स्थूल है और अनेक भावोंको प्राप्त हो रहा है वह देह पुरुष कैसे हो सकता है?

अहं द्रष्टृतया सिद्धो देहो दृश्यतया स्थितः।
ममायमिति निर्देशात्कथं स्याद्देहकः पुमान्॥ ३२॥

अहं द्रष्टारूपसे सिद्ध है और शरीर, 'मेरा है' ऐसा कहा जानेके कारण दृश्यरूपसे स्थित है; फिर यह देह पुरुष कैसे हो सकता है?

अहं विकारहीनस्तु देहो नित्यं विकारवान्।
इति प्रतीयते साक्षात् कथं स्याद्देहकः पुमान्॥ ३३॥

अहं विकाररहित है और देह सर्वदा विकारवान् है—यह स्पष्ट प्रतीत होता है; फिर यह देह पुरुष कैसे हो सकता है?

यस्मात्परमिति श्रुत्या तया पुरुषलक्षणम्।
विनिर्णीतं विमूढेन कथं स्याद्देहकः पुमान्॥ ३४॥

चतुर मनुष्योंने पुरुषका लक्षण 'यस्मात्परम्*' इत्यादि श्रुतिसे निश्चित किया है, फिर यह देह पुरुष कैसे हो सकता है?

सर्वं पुरुष एवेति सूक्ते पुरुषसंज्ञिते।
अप्युच्यते यतः श्रुत्या कथं स्याद्देहकः पुमान्॥ ३५॥

जब कि श्रुतिने पुरुषसूक्तमें भी कहा है कि 'सब कुछ पुरुष ही है' तो फिर यह देह पुरुष कैसे हो सकता है?

---

*यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥

जिससे पर या अपर तथा अणु या दीर्घ कुछ भी नहीं है और जो एक ही दिव्यधाममें वृक्षके समान निष्कम्पभावसे स्थित है उस पुरुषसे ही यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है।

असङ्गः पुरुषः प्रोक्तो बृहदारण्यकेऽपि च।

अनन्तमलसंश्लिष्टः कथं स्याद्देहकः पुमान्॥ ३६॥

बृहदारण्यकमें भी पुरुषको असङ्ग कहा गया है; फिर अनन्त मलसे पूर्ण यह देह पुरुष कैसे हो सकता है?

तत्रैव च समाख्यातः स्वयंज्योतिर्हि पूरुषः।

जडः परप्रकाश्योऽहं कथं स्याद्देहकः पुमान्॥ ३७॥

वहीं यह भी बतलाया है कि पुरुष स्वयंप्रकाश है; फिर यह परप्रकाश्य जड देह पुरुष कैसे हो सकता है?

प्रोक्तोऽपि कर्मकाण्डेन ह्यात्मा देहाद्विलक्षणः।

नित्यश्च तत्फलं भुङ्क्ते देहपातादनन्तरम्॥ ३८॥

कर्मकाण्डमें भी आत्माको देहसे पृथक् और नित्य ही बतलाया गया है। इसीसे वह देहपातके अनन्तर अपने कर्मोंका फल भोगता है।

लिङ्गं चानेकसंयुक्तं चलं दृश्यं विकारि च।

अव्यापकमसद्रूपं तत्कथं स्यात्पुमानयम्॥ ३९॥

लिङ्ग (सूक्ष्म) देह भी अनेक तत्त्वोंका संघात, चलायमान, दृश्य, विकारी, अव्यापक और असत्स्वरूप है; वह भी पुरुष कैसे हो सकता है?

एवं देहद्वयादन्य आत्मा पुरुष ईश्वरः।

सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वातीतोऽहमव्ययः॥ ४०॥

इस प्रकार आत्मा पुरुष या ईश्वर (स्थूल-सूक्ष्म) दोनों प्रकारके शरीरोंसे भिन्न है। अत: मैं सर्वात्मा, सर्वरूप, अविनाशी और सबसे परे हूँ।

द्वैत-मिथ्यात्व

इत्यात्मदेहभावेन प्रपञ्चस्यैव सत्यता।

यथोक्ता तर्कशास्त्रेण ततः किं पुरुषार्थता॥ ४१॥

शङ्का—इस प्रकार आत्मा और देहका भेद माननेसे भी, जैसी कि तर्कशास्त्रने भी प्रतिपादन की है, प्रपञ्चकी सत्यता तो रहती ही है; इससे क्या पुरुषार्थ सिद्ध हुआ?

इत्यात्मदेहभेदेन देहात्मत्वं निवारितम्।
इदानीं देहभेदस्य ह्यसत्त्वं स्फुटमुच्यते॥ ४२॥

समाधान—यहाँतक आत्मा और देहका भेद दिखलाकर देहात्मभावका निराकरण किया गया है; अब देहभेदके असत्यत्वका स्पष्ट वर्णन किया जाता है।

चैतन्यस्यैकरूपत्वाद्भेदो युक्तो न कर्हिचित्।
जीवत्वं च मृषा ज्ञेयं रज्जौ सर्पग्रहो यथा॥ ४३॥

चैतन्य एकरूप है अतः उसका भेद किसी प्रकार उचित नहीं हो सकता। इस प्रकार जैसे रज्जुमें सर्पकी प्रतीति मिथ्या है उसी तरह जीवभावको भी मिथ्या जानना चाहिये।

रज्ज्वज्ञानात्क्षणेनैव यद्वद्रज्जुर्हि सर्पिणी।
भाति तद्वच्चितिः साक्षाद्विश्वाकारेण केवला॥ ४४॥

रज्जुके अज्ञानसे जैसे एक क्षणमें ही वह सर्पिणी प्रतीत होने लगती है वैसे ही साक्षात् शुद्ध चिति ही विश्वरूपसे भास रही है।

उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते।
तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत्॥ ४५॥

प्रपञ्चका उपादानकारण ब्रह्मके अतिरिक्त और कोई नहीं है, अतः यह सम्पूर्ण प्रपञ्च ब्रह्म ही है और कुछ नहीं।

व्याप्यव्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात्।
इति ज्ञाते परे तत्त्वे भेदस्यावसरः कुतः॥ ४६॥

शास्त्र कहता है कि सब कुछ आत्मा ही है, इसलिये (जगत् और

ब्रह्मका) व्याप्य-व्यापकभाव मिथ्या है। इस परमतत्त्वके जान लेनेपर फिर भेदका अवसर ही कहाँ रहता है?

श्रुत्या निवारितं नूनं नानात्वं स्वमुखेन हि।
कथं भासो भवेदन्यः स्थिते चाद्वयकारणे॥ ४७॥

श्रुतिने स्वयं ही नानात्वका निषेध किया है। कारणके अद्वितीय होनेपर भला अन्य आभास कैसे हो सकता है?

दोषोऽपि विहितः श्रुत्या मृत्योर्मृत्युं स गच्छति।
इह पश्यति नानात्वं मायया वञ्चितो नरः॥ ४८॥

'मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है' ऐसा कहकर श्रुतिने (नानात्वदर्शनमें) दोष भी बतलाया है। मनुष्य मायासे ठगा जाकर ही संसारमें नानात्व देखता है।

जगत्की ब्रह्मरूपता

ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः।
तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत्॥ ४९॥

सम्पूर्ण भूत परमात्मा ब्रह्मसे ही उत्पन्न होते हैं, अतः ये सब ब्रह्म ही हैं—ऐसा निश्चय करना चाहिये।

ब्रह्मैव सर्वनामानि रूपाणि विविधानि च।
कर्माण्यपि समग्राणि बिभर्तीति श्रुतिर्जगौ॥ ५०॥

समस्त नाम, विविध रूप और सम्पूर्ण कर्मोंको ब्रह्म ही धारण करता है—ऐसा श्रुतिने कहा है।

सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत्॥ ५१॥

जिस प्रकार सुवर्णनिर्मित वस्तुओंकी सुवर्णता निरन्तर रहती है, उसी प्रकार ब्रह्मसे उत्पन्न हुए पदार्थोंकी ब्रह्मता भी नित्य है।

स्वल्पमप्यन्तरं कृत्वा जीवात्मपरमात्मनोः।

यः संतिष्ठति मूढात्मा भयं तस्याभिभाषितम्॥ ५२॥

जो मूढ जीवात्मा और परमात्मामें थोड़ा-सा भी अन्तर करता है उसके लिये श्रुतिने भय बतलाया है।

यत्राज्ञानाद्भवेद् द्वैतमितरस्तत्र पश्यति।

आत्मत्वेन यदा सर्वं नेतरस्तत्र चाण्वपि॥५३॥

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि ह्यात्मत्वेन विजानतः।

न वै तस्य भवेन्मोहो न च शोकोऽद्वितीयतः॥ ५४॥

जहाँ अज्ञानसे द्वैतभाव होता है वहीं कोई और दिखलायी देता है; जब सब आत्मरूप ही दिखलायी देता है तब अन्य कुछ भी नहीं रहता। उस अवस्थामें सम्पूर्ण भूतोंको आत्मभावसे जाननेवाले उस (महात्मा) को, कोई दूसरा न रहनेके कारण न मोह होता है और न शोक ही।

अयमात्मा हि ब्रह्मैव सर्वात्मकतया स्थितः।

इति निर्धारितं श्रुत्या बृहदारण्यसंस्थया॥५५॥

क्योंकि यह आत्मा सर्वात्मभावसे स्थित हुआ ब्रह्म ही है—ऐसा बृहदारण्यशाखाकी श्रुतिने निश्चय किया है।

प्रपञ्चका मिथ्यात्व

अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन्।

असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधतः॥५६॥

दूसरे क्षणमें न रहनेके कारण जैसे स्वप्न असत् है वैसे ही यह संसार व्यवहारयोग्य और अनुभव होता हुआ भी असत् है।

स्वप्नो जागरणेऽलीकः स्वप्नेऽपि न हि जागरः।

द्वयमेव लये नास्ति लयोऽपि ह्युभयोर्न च॥ ५७॥

जागृतिमें स्वप्न अलीक हो जाता है, स्वप्नमें जागृति नहीं रहती तथा सुषुप्तिमें (जागृति और स्वप्न) दोनों नहीं रहते और इन दोनोंमें सुषुप्ति नहीं रहती।

त्रयमेवं भवेन्मिथ्या गुणत्रयविनिर्मितम्।
अस्य द्रष्टा गुणातीतो नित्यो ह्येकश्चिदात्मकः॥ ५८॥

इस प्रकार सत्, रज, तम—इन तीन गुणोंसे उत्पन्न हुई ये तीनों अवस्थाएँ मिथ्या हैं, किन्तु इन तीनोंका द्रष्टा गुणोंसे परे नित्य एक और चित्स्वरूप है।

यद्वन्मृदि घटभ्रान्तिं शुक्तौ वा रजतस्थितिम्।
तद्वद्ब्रह्मणि जीवत्वं भ्रान्त्या पश्यति न स्वतः॥ ५९॥

जिस प्रकार मनुष्य भ्रमवश मिट्टीमें घड़ा और सीपीमें चाँदी देखता है उसी प्रकार वह भ्रमसे ही ब्रह्ममें जीवभाव देखता है, स्वतः नहीं।

यथा मृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा।
शुक्तौ हि रजतख्यातिर्जीवशब्दस्तथा परे॥ ६०॥

जिस प्रकार मिट्टीमें घड़ा, सुवर्णमें कुण्डल और सीपीमें चाँदी नाममात्रको ही हैं उसी प्रकार परब्रह्ममें जीव शब्द भी नाममात्र ही है।

यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा नीरं मरुस्थले।
पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि॥ ६१॥

जिस प्रकार आकाशमें नीलता, मरुभूमिमें जल और ठूँठमें पुरुषकी प्रतीति होती है उसी प्रकार चेतन आत्मामें विश्व भासता है।

यथैव शून्ये वैतालो गन्धर्वाणां पुरं यथा।
यथाकाशे द्विचन्द्रत्वं तद्वत्सत्ये जगत्स्थितिः॥ ६२॥

जैसी शून्यमें वैताल और गन्धर्वनगरकी तथा आकाशमें दो चन्द्रमाओंकी स्थिति है वैसी ही सत्में संसारकी स्थिति है।

यथा तरङ्गकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम्।
पात्ररूपेण ताम्रं हि ब्रह्माण्डौघैस्तथात्मता॥ ६३॥

जैसे तरङ्गमालाओंके रूपसे सर्वथा जल और पात्ररूपसे ताँबा ही स्फुरित होता है वैसे ही ब्रह्माण्डसमूहके रूपमें आत्मा ही स्फुरित हो रहा है।

घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः।
जगन्नाम्ना चिदाभाति ज्ञेयं तत्तदभावतः॥ ६४॥

जिस प्रकार घट-नामसे पृथ्वी और पट-नामसे तन्तु भासते हैं उसी प्रकार जगत्-नामसे चित्-शक्ति भास रही है; उस (जगत्) का बाध करके उसे जानना चाहिये।

ब्रह्मकी सर्वात्मकता

सर्वोऽपि व्यवहारस्तु ब्रह्मणा क्रियते जनैः।
अज्ञानान्न विजानन्ति मृदेव हि घटादिकम्॥ ६५॥

मनुष्योंके द्वारा जितना व्यवहार होता है वह सब ब्रह्महीकी सत्तासे होता है, किन्तु वे अज्ञानवश यह नहीं जानते। वास्तवमें घड़ा आदि सब मृत्तिका ही तो हैं।

कार्यकारणता नित्यमास्ते घटमृदोर्यथा।
तथैव श्रुतियुक्तिभ्यां प्रपञ्चब्रह्मणोरिह॥ ६६॥

जिस प्रकार घट और मृत्तिकाकी कार्य-कारणता नित्य है उसी प्रकार श्रुति और युक्तिसे प्रपञ्च और ब्रह्मकी भी है। अर्थात् जैसे घटादिमें कारणरूपसे मृत्तिका सदैव रहती है वैसे ही ब्रह्म भी संसारमें सदा सर्वत्र विद्यमान है।

गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात्।
वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चेऽपि ब्रह्मैवाभाति भासुरम्॥ ६७॥

जिस प्रकार ग्रहण किये जानेवाले घड़ेमें मिट्टी बलात् प्रतीत होती है वैसे ही दिखायी देनेवाले प्रपञ्चमें भी ब्रह्म ही स्पष्ट भासता है।

सदैवात्मा विशुद्धोऽपि ह्यशुद्धो भाति वै सदा।
यथैव द्विविधा रज्जुर्ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽनिशम्॥ ६८॥

आत्मा नित्य शुद्ध है फिर भी वह सर्वदा अशुद्ध प्रतीत होता है; जैसे कि एक ही रज्जु ज्ञानी और अज्ञानीको सदा दो प्रकारसे भासती है।

यथैव मृन्मयः कुम्भस्तद्वद्देहोऽपि चिन्मयः।
आत्मानात्मविभागोऽयं मुधैव क्रियतेऽबुधैः॥ ६९॥

जिस प्रकार घड़ा मिट्टीरूप होता है उसी प्रकार देह भी चेतनरूप है। अज्ञानीजन व्यर्थ ही यह आत्मा और अनात्माका विभाग करते हैं।

देहात्मताका निषेध

सर्पत्वेन यथा रज्जू रजतत्वेन शुक्तिका।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता॥ ७०॥

जिस प्रकार (अज्ञानवश) सर्परूपसे रज्जुका और चाँदीरूपसे सीपीका निश्चय कर लिया जाता है उसी प्रकार मूढ पुरुषोंद्वारा आत्माका देहरूपसे निश्चय किया हुआ है।

घटत्वेन यथा पृथ्वी पटत्वेनेव तन्तवः।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता॥ ७१॥

जैसे घटरूपसे पृथ्वी और पटरूपसे तन्तुओंका निश्चय होता है, वैसे ही मूढ पुरुषोंद्वारा आत्माका देहरूपसे निश्चय किया हुआ है।

कनकं कुण्डलत्वेन तरङ्गत्वेन वै जलम्।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता॥ ७२॥

जैसे कुण्डलरूपसे सुवर्ण और तरङ्गरूपसे जलकी कल्पना होती है, वैसे ही मूढ पुरुषोंद्वारा आत्माका देहरूपसे निश्चय किया हुआ है।

चोरत्वेन यथा स्थाणुर्जलत्वेन मरीचिका।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता॥ ७३॥

जिस प्रकार चोररूपसे स्थाणु (ठूँठ) का और जलरूपसे मरुस्थलका निश्चय किया जाता है उसी प्रकार मूढ पुरुषोंद्वारा देहरूपसे आत्माका निश्चय किया हुआ है।

गृहत्वेनेव काष्ठानि खड्गत्वेनेव लोहता।
विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता॥ ७४॥

जिस प्रकार काष्ठका गृहरूपसे और लोहेका खड्गरूपसे निश्चय किया जाता है उसी प्रकार मूढ पुरुषोंद्वारा आत्माका देहरूपसे निश्चय किया हुआ है।

यथा वृक्षविपर्य्यासो जलाद्भवति कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥ ७५॥

जैसे जलके कारण किसीको वृक्ष उलटा दिखलायी पड़ता हो उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

पोतेन गच्छतः पुंसः सर्वं भातीव चञ्चलम्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥ ७६॥

जहाजमें जानेवाले पुरुषको जैसे सब पदार्थ चलते हुए दिखलायी देते हैं वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

पीतत्वं हि यथा शुभ्रे दोषाद् भवति कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥ ७७॥

जिस प्रकार नेत्रदोषके कारण किसीको श्वेत वस्तुओंमें पीलापन दीख पड़ता है उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

चक्षुर्भ्यां भ्रमशीलाभ्यां सर्वं भाति भ्रमात्मकम्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥ ७८॥

जैसे घूमती हुई आँखोंसे सब चीजें चक्कर काटती हुई दिखलायी देती हैं वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

अलातं भ्रमणेनैव वर्तुलं भाति सूर्यवत्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ ७९ ॥

जिस प्रकार अलात (जलती हुई बनैती) घुमानेसे ही सूर्यके समान गोलाकार प्रतीत होता है उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देह-भाव देखता है।

महत्त्वे सर्ववस्तूनामणुत्वं ह्यतिदूरतः।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ ८० ॥

जैसे अत्यन्त दूरीके कारण सब वस्तुएँ बड़ी होती हुई भी छोटी दिखलायी पड़ती हैं वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

सूक्ष्मत्वे सर्ववस्तूनां स्थूलत्वं चोपनेत्रतः।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ ८१ ॥

तथा जिस प्रकार उपनेत्र (सूक्ष्मवीक्षण) से सब वस्तुएँ छोटी होनेपर भी बड़ी दीख पड़ती हैं उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

काचभूमौ चलत्वं वा जलभूमौ हि काचता।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ ८२ ॥

जैसे काचकी भूमिमें जल और जलमें काचका भ्रम हो जाता है, वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

यद्वदग्नौ मणित्वं हि मणौ वा वह्निता पुमान्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः ॥ ८३ ॥

जैसे कोई पुरुष अग्निमें मणि और मणिमें अग्निबुद्धि कर ले, वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

अभ्रेषु सत्सु धावत्सु सोमो धावति भाति वै।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥ ८४॥

जिस प्रकार बादलोंके दौड़नेपर चन्द्रमा दौड़ता हुआ प्रतीत होता है उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

यथैव दिग्विपर्य्यासो मोहाद्भवति कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥ ८५॥

जैसे किसीको मोहवश (भूलसे) दिग्भ्रम हो जाता है, वैसे ही अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

यथा शशी जले भाति चञ्चलत्वे न कस्यचित्।
तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥ ८६॥

जैसे किसीको जलमें चन्द्रमा हिलता हुआ दिखलायी दे उसी प्रकार अज्ञानके कारण मनुष्य आत्मामें देहभाव देखता है।

एवमात्मन्यविद्यातो देहाध्यासो हि जायते।
स एवात्मा परिज्ञातो लीयते च परात्मनि॥ ८७॥

इस प्रकार अविद्याके कारण आत्मामें देहाध्यास होता है; वही आत्मा ज्ञान हो जानेपर परमात्मामें लीन हो जाता है।

सर्वमात्मतया ज्ञातं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
अभावात्सर्वभावानां देहानां चात्मता कुतः॥ ८८॥

जब समस्त स्थावर-जङ्गम जगत्को आत्मरूपसे जान लिया तब सम्पूर्ण भावोंका अभाव हो जानेपर देहोंका आत्मत्व ही कहाँ रह सकता है?

आत्मानं सततं जानन् कालं नय महामते।
प्रारब्धमखिलं भुञ्जन्नोद्वेगं कर्तुमर्हसि॥ ८९॥

हे महामते! आत्मस्वरूपको निरन्तर जानते हुए अपने सम्पूर्ण प्रारब्धका भोग करते हुए काल व्यतीत कर; तुझे उद्विग्न न होना चाहिये।

प्रारब्धका निराकरण

उत्पन्नेऽप्यात्मविज्ञाने प्रारब्धं नैव मुञ्चति।

इति यच्छ्रूयते शास्त्रे तन्निराक्रियतेऽधुना॥ ९०॥

शास्त्रमें जो ऐसा सुना जाता है कि आत्मज्ञान हो जानेपर भी प्रारब्ध नहीं छोड़ता, उसका अब निराकरण (खण्डन) किया जाता है।

तत्त्वज्ञानोदयादूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते।

देहादीनामसत्यत्वाद्यथा स्वप्नो विबोधतः॥ ९१॥

जाग पड़नेपर जैसे स्वप्न नहीं रहता वैसे ही देहादि असत्य होनेके कारण ज्ञानोदयके पश्चात् प्रारब्ध नहीं रहता।

कर्म जन्मान्तरकृतं प्रारब्धमिति कीर्तितम्।

तत्तु जन्मान्तराभावात्पुंसो नैवास्ति कर्हिचित्॥ ९२॥

जन्मान्तरमें किया हुआ कर्म ही प्रारब्ध कहलाता है, अतः (ज्ञानीकी दृष्टिमें) जन्मान्तरका अभाव होनेसे वह किसी अवस्थामें नहीं है।

स्वप्नदेहो यथाध्यस्तस्तथैवायं हि देहकः।

अध्यस्तस्य कुतो जन्म जन्माभावे हि तत्कुतः॥ ९३॥

जिस प्रकार स्वप्नशरीर अध्यस्त है उसी प्रकार यह देह भी है; अध्यस्तका जन्म कैसे हो सकता है? और जन्म न होनेपर प्रारब्ध भी कहाँसे होगा?

उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्भाण्डस्येव कथ्यते।

अज्ञानं चैव वेदान्तैस्तस्मिन्नष्टे क्व विश्वता॥ ९४॥

घड़ेके उपादान-कारण मिट्टीके समान वेदान्तग्रन्थोंमें अज्ञानको प्रपञ्चका उपादान-कारण बतलाया है; (ज्ञानसे) उसका नाश हो जानेपर फिर विश्व कहाँ ठहर सकता है?

यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात्।
तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः॥ १५॥

जिस प्रकार मनुष्य भ्रमवश रस्सीके स्थानमें सर्प देखता है उसी प्रकार सत्यको न जाननेपर ही मूढबुद्धि संसारको देखता है।

रज्जुरूपे परिज्ञाते सर्पभ्रान्तिर्न तिष्ठति।
अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चः शून्यतां व्रजेत्॥ १६॥

जैसे रस्सीका रूप जान लेनेपर सर्पभ्रम नहीं रहता उसी प्रकार अधिष्ठान (ब्रह्म) को जान लेनेपर प्रपञ्च शून्यरूप हो जाता है।

देहस्यापि प्रपञ्चत्वात्प्रारब्धावस्थितिः कुतः।
अज्ञानिजनबोधार्थं प्रारब्धं वक्ति वै श्रुतिः॥ १७॥

देह भी प्रपञ्च ही है तो फिर प्रारब्ध कहाँ रह सकता है? बस, अज्ञानियोंको समझानेके लिये ही श्रुति प्रारब्ध बतलाती है।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।
बहुत्वं तन्निषेधार्थं श्रुत्या गीतं च यत्स्फुटम्॥ १८॥

क्योंकि श्रुतिने 'उस परावरके देख लेनेपर इसके (सम्पूर्ण) कर्म क्षीण हो जाते हैं' इस वाक्यमें उस (प्रारब्ध) का निषेध करनेके लिये ही स्पष्टतया बहुवचनका प्रयोग किया है।

उच्यतेऽज्ञैर्बलाच्चैतत्तदानर्थद्वयागमः।
वेदान्तमतहानं च यतो ज्ञानमिति श्रुतिः॥ १९॥

यदि अज्ञानीजन बलात् (ज्ञानीके) प्रारब्धका प्रतिपादन करेंगे तो इस (प्रारब्धरूप द्वैतके स्वीकार करने) से (मोक्षाभाव और ज्ञान-सम्प्रदायका उच्छेदरूप) दो अनर्थ उपस्थित होंगे तथा अद्वैत वेदान्त-सिद्धान्तकी भी हानि होगी। इसलिये (प्रारब्धका प्रतिपादन करनेवाली व्यावहारिक श्रुतियोंको छोड़कर) जिनसे ज्ञान प्राप्त हो उन्हीं श्रुतियोंको ग्रहण करना चाहिये।

निदिध्यासनके पंद्रह अङ्ग

त्रिपञ्चाङ्गान्यथो वक्ष्ये पूर्वोक्तस्य हि लब्धये।
तैश्च सर्वैः सदा कार्यं निदिध्यासनमेव तु॥ १००॥

अब मैं पूर्वोक्त (ज्ञाननिष्ठा) की प्राप्तिके लिये पंद्रह अङ्ग बतलाता हूँ। उन सबसे सर्वदा निदिध्यासन (अभ्यास) करना चाहिये।

नित्याभ्यासादृते प्राप्तिर्न भवेत्सच्चिदात्मनः।
तस्माद्ब्रह्म निदिध्यासेज्जिज्ञासुः श्रेयसे चिरम्॥ १०१॥

निरन्तर अभ्यास किये बिना सच्चित्स्वरूप आत्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः जिज्ञासुको चाहिये कि कल्याण-प्राप्तिके लिये चिरकालतक ब्रह्मचिन्तन करे।

यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालतः।
आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः॥ १०२॥
प्राणसंयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा।
आत्मध्यानं समाधिश्च प्रोक्तान्यङ्गानि वै क्रमात्॥ १०३॥

यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देहकी समता, नेत्रोंकी स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये क्रमसे पंद्रह अङ्ग बतलाये गये हैं।

सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः।
यमोऽयमिति सम्प्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः॥ १०४॥

'सब ब्रह्म ही है' ऐसे ज्ञानसे इन्द्रियोंका वशीभूत हो जाना यम कहलाता है। इसका बारम्बार अभ्यास करना चाहिये।

सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः॥ १०५॥

सजातीय वृत्तिका प्रवाह और विजातीयका तिरस्कार—यही परमानन्दरूप नियम है। बुद्धिमान् लोग इसका नियमपूर्वक पालन करते हैं।

त्यागः प्रपञ्चरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्।
त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः॥ १०६॥

प्रपञ्चको चेतनस्वरूप देखनेसे उसके रूपका त्याग करना ही महान् पुरुषोंका वन्दनीय त्याग है, क्योंकि वह तुरंत मोक्ष देनेवाला है।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भजेत्सर्वदा बुधः॥ १०७॥

जिसे न पाकर मनसहित वाणी लौट आती है तथा जिस मौनतक योगियोंकी ही गति है विद्वान् सदा उसीको धारण करे।

वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते।
प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः॥ १०८॥

जहाँसे वाणी लौट आती है उस (ब्रह्म) का भला कौन वर्णन कर सकता है? और यदि प्रपञ्चको ही वक्तव्य (शब्दका विषय) मानें तो वह भी शब्दरहित है।*

इति वा तद्भवेन्मौनं सतां सहजसंज्ञितम्।
गिरा मौनं तु बालानां प्रयुक्तं ब्रह्मवादिभिः॥ १०९॥

अतः सत्पुरुषोंका दूसरा स्वाभाविक मौन यह (प्रपञ्चका अशब्दत्व) भी हो सकता है। ब्रह्मवादियोंने वाणीका मौन तो मूर्खोंके लिये बतलाया है।

---

* जो वस्तु सत् या असत् होती है वही शब्दका विषय हो सकती है। प्रपञ्चको ज्ञानकालमें बाधित हो जानेके कारण सत् नहीं कह सकते और अज्ञानावस्थामें प्रतीत होनेके कारण असत् भी नहीं कह सकते। अतः वह शब्दका विषय नहीं—वह अनिर्वचनीय है। इसके सिवा शब्द और उससे कही जानेवाली वस्तुओंका सम्बन्ध काल्पनिक है वास्तविक नहीं। इसलिये भी प्रपञ्चको शब्दका विषय नहीं कहा जा सकता।

आद्यावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते।

येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः॥ ११०॥

जिसमें आदि, अन्त और मध्यमें कोई भी जन नहीं है तथा जिससे यह जगत् निरन्तर व्याप्त है वही देश जनशून्य कहा गया है।

कलनात्सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः।

कालशब्देन निर्दिष्टो ह्यखण्डानन्द अद्वयः॥ १११॥

ब्रह्मा आदि समस्त भूतोंकी एक पलमें ही कलना करनेके कारण अद्वितीय अखण्डानन्दरूप ब्रह्म ही कालशब्दसे कहा जाता है।

सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम्।

आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम्॥ ११२॥

जिस अवस्थामें सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्मचिन्तन हो सके उसे ही आसन जानना चाहिये; दूसरा सुखनाशक आसन आसन नहीं है।

सिद्धं यत्सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमव्ययम्।

यस्मिन् सिद्धाः समाविष्टास्तद्वै सिद्धासनं विदुः॥ ११३॥

जो समस्त भूतोंका आदिकारण है, विश्वका अविनाशी अधिष्ठान है और जिसमें सिद्धजन स्थित रहते हैं उसे ही सिद्धासन समझना चाहिये।

यन्मूलं सर्वभूतानां यन्मूलं चित्तबन्धनम्।

मूलबन्धः सदा सेव्यो योगोऽसौ राजयोगिनाम्॥ ११४॥

जो समस्त भूतोंका मूल है और जिसके आश्रयसे चित्त स्थिर किया जाता है उस मूलबन्धका सदा सेवन करना चाहिये। यही राजयोगियोंका योग है।

अङ्गानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते।

नो चेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत्॥ ११५॥

जिस समय चित्त सम ब्रह्ममें लीन हो जाय उसी समय अंगोंकी समता

समझनी चाहिये। अन्यथा सूखे वृक्षके समान अंगोंकी निश्चलताका नाम समता नहीं है।

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत्।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी॥११६॥

दृष्टिको ज्ञानमयी करके संसारको ब्रह्ममय देखे। यही दृष्टि अति उत्तम है; नासिकाके अग्रभागको देखनेवाली नहीं।

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्।
दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी॥११७॥

जहाँ द्रष्टा, दर्शन और दृश्य (इस त्रिपुटी) का अभाव हो जाता है वहीं दृष्टि करनी चाहिये, नासिकाके अग्रभागपर नहीं।

चित्तादिसर्वभावेषु ब्रह्मत्वेनैव भावनात्।
निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते॥११८॥

चित्तादि समस्त भावोंमें ब्रह्मरूपसे ही भावना करनेसे सम्पूर्ण वृत्तियोंका निरोध हो जाता है। वही प्राणायाम कहलाता है।

निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः।
ब्रह्मैवास्मीति या वृत्तिः पूरको वायुरीरितः॥११९॥

प्रपञ्चका निषेध करना रेचक-प्राणायाम है और 'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसी जो वृत्ति है वह पूरक-प्राणायाम कहलाता है।

ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः।
अयं चापि प्रबुद्धानामज्ञानां घ्राणपीडनम्॥१२०॥

फिर उस (ब्रह्माकार) वृत्तिकी निश्चलता ही कुम्भक-प्राणायाम है। जाग्रत् पुरुषोंके लिये तो यही क्रम है, अज्ञानियोंके लिये घ्राणपीडन ही प्राणायाम है।

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चिति मज्जनम्।
प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुमुक्षुभिः॥१२१॥

विषयोंमें आत्मभाव करके मनको चेतनमें डुबो देनेको ही प्रत्याहार जानना चाहिये। मुमुक्षुजन इसीका अभ्यास करें।

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात्।
मनसो धारणं चैव धारणा सा परा मता॥ १२२॥

मन जहाँ-जहाँ जाय वहीं-वहीं ब्रह्मका साक्षात्कार करते हुए मनको स्थिर करना ही उत्तम धारणा मानी गयी है।

ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः।
ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी॥ १२३॥

'मैं ब्रह्म ही हूँ' इस सद्वृत्तिसे जो परमानन्ददायिनी निरालम्ब स्थिति होती है वही 'ध्यान' शब्दसे प्रसिद्ध है।

निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिर्ज्ञानसंज्ञकः॥ १२४॥

निर्विकार तथा ब्रह्माकारवृत्तिसे जो पूर्णतया वृत्तिहीनता हो जाती है वही ज्ञानसमाधि है।

एवं चाकृतिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत्।
वश्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रयुक्तः सम्भवेत्स्वयम्॥ १२५॥

इस प्रकार इस स्वाभाविक आनन्दका तबतक भली प्रकार अभ्यास करे जबतक कि चित्तको लगानेपर एक क्षणमें ही वह अपने वशीभूत न हो जाय।

ततः साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट्।
तत्स्वरूपं न चैकस्य विषयो मनसो गिराम्॥ १२६॥

फिर वह योगिराज सब साधनोंसे छूटकर सिद्ध हो जाता है। वही उसका स्वरूप है; वह किसी एकके मन या वाणीका विषय नहीं है।

समाधिके विघ्न

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना आयान्ति वै बलात्।
अनुसन्धानराहित्यमालस्यं भोगलालसम्॥ १२७॥
लयस्तमश्च विक्षेपो रसास्वादश्च शून्यता।
एवं यद्विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्मविदा शनैः॥ १२८॥

समाधिका अभ्यास करनेपर अनुसन्धानराहित्य, आलस्य, भोग-वासना, लय, तम, विक्षेप, रसास्वाद और शून्यता आदि विघ्न बलात् अवश्य आते हैं। इस प्रकार जो अनेक विघ्न आते हैं, ब्रह्मवेत्ताको उन्हें धीरे-धीरे त्यागना चाहिये।

भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।
पूर्णवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत्॥ १२९॥

(समाधिके समय) भाववृत्ति रहनेसे भावत्व, शून्यवृत्ति रहनेसे शून्यत्व और पूर्णवृत्ति रहनेसे पूर्णत्वकी प्राप्ति होती है। अतः पूर्णत्वका अभ्यास करे।

ब्राह्मी वृत्तिका महत्त्व

ये ही वृत्तिं जहत्येनां ब्रह्माख्यां पावनीं पराम्।
वृथैव ते तु जीवन्ति पशुभिश्च समा नराः॥ १३०॥

जो लोग इस परम पवित्र ब्राह्मी वृत्तिका त्याग करते हैं वे वृथा ही जीते हैं, तथा वे पशुओंके समान हैं।

ये हि वृत्तिं विजानन्ति ये ज्ञात्वा वर्धयन्त्यपि।
ते वै सत्पुरुषा धन्या वन्द्यास्ते भुवनत्रये॥ १३१॥

जो इस वृत्तिको जानते हैं और जानकर बढ़ाते भी हैं वे ही सत्पुरुष हैं तथा वे ही त्रिलोकीमें धन्य और वन्दनीय भी हैं।

येषां वृत्तिः समावृद्धा परिपक्वा च सा पुनः।
ते वै सद्ब्रह्मतां प्राप्ता नेतरे शब्दवादिनः॥ १३२॥

जिनकी यह ब्राह्मी वृत्ति बढ़ी हुई और परिपक्व होती है वे ही अति श्रेष्ठ ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं, केवल शब्दसे ही कहनेवाले अन्य पुरुष नहीं।

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
ते ह्यज्ञानितमा नूनं पुनरायान्ति यान्ति च॥ १३३॥

जो ब्रह्मवार्तामें कुशल हैं किन्तु ब्राह्मी वृत्तिसे रहित और रागयुक्त हैं, निश्चय ही वे अत्यन्त अज्ञानी हैं और बारम्बार जन्मते-मरते रहते हैं।

निमेषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना।
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुकादयः॥ १३४॥

ब्रह्मादि (लोकपालों), सनकादि (सिद्धों) और शुकदेवादि (परमहंसों) के समान वे आधे पल भी ब्रह्ममयी वृत्तिके बिना नहीं रहते।

वृत्तिज्ञानका साधन

कार्ये कारणतायाता कारणे न हि कार्यता।
कारणत्वं ततो गच्छेत्कार्याभावे विचारतः॥ १३५॥

कार्यमें कारण अनुगत होता है, कारणमें कार्य अनुगत नहीं होता। अतः विचार करनेसे कार्यका अभाव होनेके कारण कारणकी कारणता भी नहीं रहती।

अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै वाचामगोचरम्।
द्रष्टव्यं मृद्‍घटेनैव दृष्टान्तेन पुनः पुनः॥ १३६॥

इस प्रकार जो वाणीका अविषय है वह वस्तु शुद्ध है। इसका बारम्बार मिट्टी और घड़ेके दृष्टान्तसे ही विचार करना चाहिये।

अनेनैव प्रकारेण वृत्तिर्ब्रह्मात्मिका भवेत्।
उदेति शुद्धचित्तानां वृत्तिज्ञानं ततः परम्॥ १३७॥

इसी प्रकारसे वृत्ति ब्रह्मात्मिका हो जाती है और फिर उन शुद्धचित्त पुरुषोंके अन्तःकरणमें वृत्तिज्ञान उदय होता है।

कारणं व्यतिरेकेण पुमानादौ विलोकयेत्।
अन्वयेन पुनस्तद्धि कार्ये नित्यं प्रपश्यति॥ १३८॥

पुरुषको चाहिये कि पहले वह कारणको (कार्यसे) अलग करके देखे, पीछे वह सर्वदा उसे कार्यमें अनुगतरूपसे देखने लगता है।

कार्ये हि कारणं पश्येत् पश्चात्कार्यं विसर्जयेत्।
कारणत्वं ततो नश्येदवशिष्टं भवेन्मुनिः॥ १३९॥

पहले कार्यहीमें कारणको देखे और फिर कार्यको त्याग दे। इस प्रकार कारणताका नाश हो जाता है और मुनि (कार्य-कारणतासे रहित) अवशिष्टरूप हो जाता है।

भावितं तीव्रवेगेन वस्तु यन्निश्चयात्मना।
पुमांस्तद्धि भवेच्छीघ्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत्॥ १४०॥

जिस वस्तुका निश्चयपूर्वक तीव्र वेगसे चिन्तन किया जाता है—पुरुष तुरंत वही हो जाता है—यह बात भृंगी कीड़ेके दृष्टान्तसे जाननी चाहिये।

अदृश्यं भावरूपं च सर्वमेतच्चिदात्मकम्।
सावधानतया नित्यं स्वात्मानं भावयेद्बुधः॥ १४१॥

यह सम्पूर्ण जगत् अदृश्य भावरूप चेतनमय है, इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष सावधान होकर नित्यप्रति अपने आत्माका चिन्तन करे।

दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत्।
विद्वान्नित्यसुखे तिष्ठेद्धिया चिद्रसपूर्णया॥ १४२॥

विद्वान्को चाहिये कि दृश्यको अदृश्य करके उसका ब्रह्मरूपसे चिन्तन करे और चिद्रसपूर्ण बुद्धिसे नित्य सुखमें मग्न रहे।

एभिरङ्गैः समायुक्तो राजयोग उदाहृतः।
किञ्चित्पक्वकषायाणां हठयोगेन संयुतः॥ १४३॥

परिपक्कं मनो येषां केवलोऽयं च सिद्धिदः।
गुरुदैवतभक्तानां सर्वेषां सुलभो जवात्॥१४४॥

इन सब अंगोंसे युक्त योगका नाम राजयोग है। जिनकी वासनाएँ कुछ कम क्षीण हुई होती हैं उन्हें यह हठयोगके सहित और जिनका चित्त परिपक्क (वासनाहीन) होता है उन्हें अकेला ही सिद्धि देनेवाला होता है। यह सभी गुरु और ईश्वरके भक्तोंको तुरंत सुगमतासे प्राप्त हो सकता है।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपाद-
शिष्यश्रीमच्छङ्करभगवता कृताऽपरोक्षानुभूतिः समाप्ता।